

सान्ध्य गीत

महादेवी

२१.



श्रीमती महादेवीजी का जन्म फर्रुखाबाद के एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ। सन् १९३३ में आपने संस्कृत में एम० ए० पास किया और उसी वर्ष प्रयाग-महिला-विद्यापीठ में प्रिंसिपल नियुक्त हो गईं। आपके नाना ब्रजभाषा के अच्छे कवि और भक्त पुरुष थे। माता हिन्दी कविता की विदुषी तथा उपासक थीं। लसी, सूर और मीरा की रचनाओं का परिचय पको पहले-पहल माता ही से प्राप्त हुआ। पहले पने ब्रजभाषा में कुछ कविताएँ लिखीं; परन्तु शीघ्र ही मैथिलीशरण गुप्त की खड़ी बोली की रचनाओं से भावित होकर आपने भी खड़ी बोली में कविताएँ लिखना रंभ कर दिया। आधुनिक हिन्दी-कवियों में आपने जितनी कप्रियता प्राप्त की है, उतनी बहुत कम कवियों को प्राप्त ई है। आपने कहानियों से भी अधिक आकर्षक जो संस्मर-त्मक रेखा-चित्र और निबन्ध लिखे हैं, उन्हें पढ़कर यह सिद्ध हो जाता है कि पद्य के समान ही गद्य पर भी आपका हन अधिकार है।

आपकी काव्य-रचनाओं में 'दीपशिखा' और 'यामा' जैसे ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपके चित्रों से प्रमाणित हो गया है कि आप चित्रकला में भी कुशल हैं। मंगलाप्रसाद पारितोषिक आपको प्राप्त हो चुका है।

'दीपशिखा', 'यामा', 'नीरजा', 'अतीत के चल-चित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' आदि आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

अभी कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेश धारा-सभा की आप सदस्या चुनी गईं, और राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' पदक भी आपको प्राप्त हुआ है।







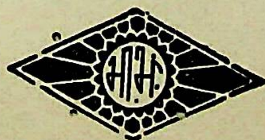
सान्ध्यगीत | महादेवी वर्मा

सान्ध्य गीत

●

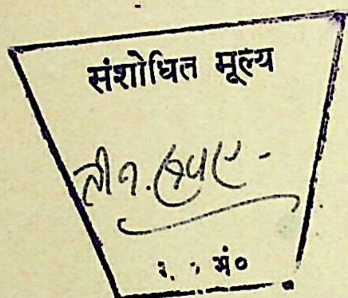
महादेवी वर्मा

●



ग्रन्थ-संख्या—१५९

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद



पंचम संस्करण
सं० २०१७ वि०
मूल्य २/५०



मुद्रक
सीताराम गुण्ठे
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

अपनी बात

सान्ध्य गीत में नीरजा के समान ही कुछ स्फुट गीत संग्रहीत हैं। नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है, रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था; परन्तु नीरजा और सान्ध्य गीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देख कर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय में खिला हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख-दुःख-मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में न जाने कैसे मेरे मन ने उस बाहर-भीतर में एक सामञ्जस्य-सा ढूँढ़ लिया है जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।

मनुष्य के सुख-दुःख जिस प्रकार चिरन्तन हैं उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही चिरन्तन रही है, परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्हें व्यक्त करने के साधनों में प्रथम कौन था।

सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मि छूकर चिड़िया आनन्द में चहचहा उठती है और मेघ को घुमड़ता घिरता देख कर मयूर नाच उठता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले पहल अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा ही किया हो। विशेष कर स्वर-सामञ्जस्य में बँधा आ गेय काव्य मनुष्य-हृदय के कितना निकट है यह उदात्त अनुदात्त स्वरों

में बँधे वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणों में समा जाने वाले प्राकृत पदों के अधिकारी हम भली भाँति समझ सके हैं।

प्राचीन हिन्दी साहित्य का भी अधिकांश गेय है। तुलसी का इष्ट के प्रति विनीत आत्म-निवेदन गेय है, कबीर का बुद्धिगम्य तत्त्व-निदर्शन संगीत की मधुरता में बसा हुआ है, सूर के कृष्ण-जीवन का बिखरा इतिहास भी गीतिमय है और मीरा की व्यथासिक्त पदावली तो सारे गीति-जगत् की सम्राज्ञी ही कही जाने योग्य है।

सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्थाविशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। इसमें कवि को संयम की परिधि में बँधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता में कला की सीमा लाँघ जाते हैं और उसके उपरान्त भाव के संस्कारमात्र में मर्मस्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्त क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में भी है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे दुःखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा। तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं।

मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहिणी के लिए भावातिरेक

सहज प्राप्य था, उसके वाह्य राजरानीपन और आन्तरिक साधना में संयम के लिए पर्याप्त अवकाश था। इसके अतिरिक्त वेदना भी आत्मानुभूत थी, अतः उसका 'हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' सुन कर यदि हमारे हृदय का तार-तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम-रोम उसकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। सूर का संयम भावों की कोमलता और भाषा की मधुरता के उपयुक्त ही है; परन्तु कथा इतनी परायी है कि हम बहने की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं बहते नहीं, और प्रातः स्मरणीय गोस्वामी जी के विनय के पद तो आकाश की मन्दाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारी कभी गँदली, कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं। मनुष्य की चिरन्तन अपूर्णता का ध्यान कर उनके पूर्ण इष्ट के सन्मुख हमारा मस्तक श्रद्धा से, नम्रता से नत हो जाता है, परन्तु हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता। इसके विपरीत कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर हममें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं भाव नहीं, जो गीत का लक्ष्य है।

हिन्दी-काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्तिप्रधान जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही देना नहीं चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कम्पन को अंकित कर लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं। सम्भव है यह उस युग की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कह कर संसार भर का इतिहास कहना था; हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।

इस युग के गीतों की एकरूपता में भी ऐसी विविधता है जो उन्हें बहुत काल तक सुरक्षित रख सकेगी। इनमें कुछ गीत मलय-समीर के झोंके के समान हमें बाहर से स्पर्श कर अन्तरतम तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन

से बोझिल पंखों द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिप कर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते हैं और कुछ मन्दिर के पूत धूप-धूम के समान हमारी दृष्टि को धुँधला परन्तु मन को सुरभित किये बिना नहीं रहते।

प्रकाश-रेखाओं के मार्ग में बिखरी हुई बदलियों के कारण जैसे एक ही विस्तृत आकाश के नीचे हिलोरें लेने वाली जलराशि में कहीं छाया और कहीं आलोक का आभास मिलने लगता है उसी प्रकार हमारी एक ही काव्यधारा अभिव्यक्ति की भिन्न शैलियों के अनुसार भिन्नवर्णी हो उठी है।

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था, और जिसके कारण मनुष्य की प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एक-रूपता के समान अनेकः रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत्-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चञ्चलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तन-शील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

परन्तु इस सम्बन्ध से मानव-हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं

घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।

रहस्यवाद, नाम के अर्थ में छायावाद के समान नवीन न होने पर भी प्रयोग के अर्थ में विशेष प्राचीन नहीं। प्राचीन काल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिए उसमें स्थान कहाँ! वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी तथा पारलौकिकी सत्ता विषयक मत-मतान्तर मस्तिष्क से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध बुद्ध चेतन को विकारों में लपेट रखने का एक मात्र साधन है। योग का रहस्यवाद इन्द्रियों को पूर्णतः वश में करके आत्मा का कुछ विशेष साधनाओं और अभ्यासों के द्वारा इतना ऊपर उठ जाना है जहाँ वह शुद्ध चेतन से एकाकार हो जाता है। सूफीमत के रहस्यवाद में अवश्य ही प्रेमजनित आत्मानुभूति और चिरन्तन प्रियतम का विरह समाविष्ट है, परन्तु साधनाओं और अभ्यासों में वह भी योग के समकक्ष रखा जा सकता है और हमारे यहाँ कबीर का रहस्यवाद यौगिक क्रियाओं से युक्त होने के कारण योग, परन्तु आत्मा और परमात्मा के मानवीय प्रेम सम्बन्ध के कारण वैष्णव युग के उच्चतम कोटि तक पहुँचे हुए प्रणय-निवेदन से भिन्न नहीं।

आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं वह इन सब की विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँध कर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य

के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका। इसमें सन्देह नहीं कि इस वाद ने रूढ़ि बन बहुतों को भ्रम में डाल दिया है, परन्तु जिन इने-गिने व्यक्तियों ने इसे वास्तव में समझा उन्हें इस नीहारलोक में भी गन्तव्य मार्ग स्पष्ट दिखाई दे सका। इस काव्यधारा की अपार्थिव पार्थिवता और साधना की न्यूनता ने सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है, अतः यदि इसका रूप कुछ विकृत होता जा रहा हो तो आश्चर्य की बात नहीं।

हम यह समझ नहीं सके हैं कि रहस्यवाद आत्मा का गुण है, काव्य का नहीं। काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं; उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श-मात्र से सोना कर दे। एक पागल-से चित्रकार को जब फटा कागज, टूटी तूलिका और धब्बे डाल देने वाला रंग मिल जाता है तब क्षण भर में वह निर्जीव कागज जीवित हो उठता है, रंगों में कल्पना साकार हो उठती है, रेखाओं में जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है, उस पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हम हँसते हैं, रोते हैं और उसे मानवीय सम्बन्धों में बाँध रखना चाहते हैं। एक निरर्थक झनझन से पूर्ण टूटे एकतारे के जर्जर तारों में गायक की कुशल उँगलियाँ उलझ जाने पर उन्हीं तारों में हमारे सुख-दुख, रो-हँस उठते हैं, सीमा के सारे संकीर्ण बन्धन छिन्न-भिन्न होकर बह जाते हैं और हम किसी अज्ञात सौन्दर्य-लोक में पहुँच कर चकित-से मुग्ध-से उसे सदा सुनते रहने की इच्छा करने लगते हैं। निरन्तर पैरों से ठुकराये जाने वाले कुरूप पाषाण से शिल्पी के कुशल हाथ का स्पर्श होते ही वही पाषाण मोम के समान अपना आकार बदल डालता है, उसमें हमारे सौन्दर्य के, शक्ति के आदर्श जाग उठते हैं और तब उसी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित कर चन्दन-फूल से पूज कर अपने को धन्य मानते हैं। जल का एक रंग भिन्न-भिन्न रंगवाले पात्रों में जैसे अपना रंग बदल लेता है उसी प्रकार चिरन्तन

सुख-दुख हमारे हृदयों की सीमा और रंग के अनुसार बन कर प्रकट होते हैं। हमें अपने हृदयों की सारी अभिव्यक्तियों को एक ही रूप देने को आकुल न होना चाहिए, क्योंकि यह प्रयत्न हमें किसी भी दशा में सफल न होने देगा।

मेरे गीत मेरा आत्मनिवेदन मात्र हैं—उनके विषय में कुछ कह सकना मेरे लिए सम्भव नहीं। इन्हें मैं अपनी अकिञ्चन भेंट के अतिरिक्त कुछ नहीं मानती।

अपने चित्रों के विषय में कहते हुए मुझे जिस संकोच का अनुभव हो रहा है वह भी केवल शिष्टाचार-जनित न होकर अपनी अपात्रता के यथार्थ ज्ञान-जनित है। मैं सत्य अर्थ में कोई चित्रकार नहीं हूँ, हो सकने की सम्भावना भी कम है, परन्तु शैशव से ही रंग और रेखाओं के प्रति मेरा बहुत कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसा कविता के प्रति। मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाँध कर चलता रहा है, इसीसे जब रात-दिन होने का प्राकृतिक कारण मुझे ज्ञात न था तभी सन्ध्या से रात तक बदलने वाले आकाश के रंगों में मुझे परियों का दर्शन होने लगा था, जब मेघों के बनने का क्रम मेरे लिए अज्ञेय था तभी उनके वाष्पतन में दिखाई देनेवाली आकृतियों का मैं नामकरण कर चुकी थी और जब मुझे तारों का हमारी पृथ्वी से बड़ा या उसके समान होना बता दिया गया तब भी मैं रात को अपने आँगन में 'आओ, प्यारे तारे आओ, मेरे आँगन में बिछ जाओ' गा-गाकर उन महान् लोकों को नीचे बुलाने में नहीं हिचकिचाती थी। रात को स्लेट पर गणित के स्थान में तुक मिलाकर और दिन में मा या चाची की सिन्दूर की डिबिया चुरा कर कोने में फर्श पर रंग भरना और दण्ड पाना मुझे अब तक स्मरण है। कह नहीं सकती अब वे वयोवृद्ध चित्रकार जिनके निकट मैंने रेखाओं का अभ्यास किया था, होंगे या नहीं। यदि होंगे तो सम्भव है उन्हें वह विद्यार्थिनी न भूली हो जो एक रेखा खींच कर तुरन्त ही उसमें भरने के लिए रंग माँगती थी और जब वे रंग भरना सिखाने लगे तब

जो नियम से उनके सामने भरे हुए रंगों पर रात को दूसरा रंग फेर कर चित्र ही नष्ट कर देती थी।

इसके उपरान्त का इतिहास तो पाठ्य-पुस्तकों, परीक्षाओं और प्रमाण-पत्रों का इतिहास है जिसे कविता ही सरस बनाती रही। मेरी रंगीन कल्पना के जो रंग शब्दों में न समाकर छलक पड़े या जिनकी शब्दों में अभिव्यक्ति मुझे पूर्ण रूप से सन्तोष न दे सकी वे ही तूलिका के आश्रित हो सके हैं, इसीसे इन रंगों के संघात का स्वतः पूर्ण होना सम्भव नहीं। यह तो मेरे भावातिरेक में उत्पन्न कविता-प्रवाह से निकल कर एक भिन्न दिशा में जाने वाली शाखा-मात्र है, अतः दोनों गुण-दोष में समान ही रहेंगे—यदि एक का उद्‌गम और वातावरण धुँधला है तो दूसरे का भी वैसा ही होना अनिवार्य-सा है। यदि एक वस्तुजगत् को विशेष दृष्टिकोण से देखता और विशेष रूप में ग्रहण करता है तो दूसरे का दृष्टिकोण भी कुछ भिन्न और ग्रहण करने की शक्ति कुछ विपरीत न हो सकेगी।

मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि चित्रकार के लिए कवि होना जितना सहज हो सकता है उतना कवि के लिए चित्रकार हो सकना नहीं। कला जीवन में जो कुछ 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है सब का उत्कृष्टतम विकास है, परन्तु इस उत्कृष्टतम विकास में भी श्रेणियाँ हैं। जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतन्त्र होकर भावों की अधिकाधिक अभिव्यञ्जना में समर्थ हो सकेगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जायगी। इस दृष्टि से भौतिक आधार की अधिकता और भावव्यञ्जना की अपेक्षाकृत न्यूनता से युक्त वास्तुकला हमारी कला का प्रथम सोपान और भौतिक सामग्री के अभाव और भावव्यञ्जना की अधिकता से पूर्ण काव्यकला उसका सबसे ऊँचा अन्तिम सोपान मानी जायगी। चित्रकला वास्तु-कला की अपेक्षा भौतिक आधार से स्वतन्त्र होने पर भी काव्यकला की अपेक्षा अधिक परतंत्र है, कारण वह देश के ऐसे कठिनतम बन्धन में बँधी है जिसमें चित्रकला बने

रहने के लिए उसे सदा ही बँधा रहना होगा। स्वतन्त्र वातावरण का विहारी विहग अपने स्वभाव को बन्धनों के उपयुक्त उतनी सरलता से नहीं बना पाता जितनी सुगमता तथा सहज भाव से बन्धनों का पक्षी उन्मुक्त वातावरण की पात्रता प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक कवि चित्र के, लम्बाई-चौड़ाई से युक्त देश के बन्धनों और भावों की अपेक्षाकृत सीमित व्यञ्जना से क्षुब्ध-सा हो उठता है। न वह इन बन्धनों को तोड़ देने में समर्थ है और न काव्य के वातावरण को भूल सकता है।

इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है जो चित्रकार को कवि से एकाकार न होने देगा। चित्रकला निरीक्षण और कल्पना तथा कविता, भावातिरेक और कल्पना पर निर्भर है। चित्रकार प्रत्यक्ष और कल्पना की सहायता से जो मानसिक चित्र बना लेता है उसे बहुत काल व्यतीत हो जाने पर भी रेखाओं में बाँध कर रंग से जीवित कर देने की वैसी ही क्षमता रखता है; परन्तु कवि के लिए भावातिरेक और कल्पना की सहायता से किसी लोक की सृष्टि कर उसे बहुत काल के उपरान्त उसी तन्मयता से, उसी तीव्रता से व्यक्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। अवश्य ही यह पद्यबद्ध इतिहास के समान वर्णनात्मक रचनाओं के विषय में सत्य नहीं, परन्तु व्यक्तिप्रधान भावात्मक काव्य का वही अंश अधिक-से-अधिक अन्तस्तल में समा जाने वाला, अनेक भूले सुखदुखों की स्मृतियों में प्रतिध्वनित हो उठने के उपयुक्त और जीवन के लिए कोमलतम स्पर्श के समान होगा, जिसमें कवि ने गतिमय आत्मानुभूत भावातिरेक को संयत रूप में व्यक्त कर उसे अमर कर दिया हो या जिसे व्यक्त करते समय वह अपनी साधना द्वारा किसी बीते क्षण की अनुभूति की पुनरावृत्ति करने में सफल हो सका हो। केवल संस्कारमात्र भावात्मक कविता के लिए सफल साधन नहीं है और न किसी बीती अनुभूति की उतनी ही तीव्र मानसिक पुनरावृत्ति ही सबके लिए सब अवस्थाओं में सुलभ मानी जा सकती है।

बालक अपना सक्रिय जीवन जिस प्रत्यक्ष और उसके अनुकरण से आरम्भ करता है वही निरीक्षण और अनुकरण पर्याप्त मात्रा में चित्रकार के अर्थ में समाहित है। परन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो कवि इन सीढ़ियों से ऊपर पहुँचा हुआ जान पड़ेगा, क्योंकि इन व्यापारों से उत्पन्न सुख-दुखमयी अनुभूति को यथार्थ व्यक्त करने की उत्कंठा उसका प्रथम पाठ है। इसमें सन्देह नहीं कि चित्रमय काव्य हो सकता है और काव्यमय चित्र परन्तु प्रायः सफल चित्रकार असफल कवि का और सफल कवि असफल चित्रकार का शाप साथ लाता रहा है।

मैं तो किसी भी दिशा में सफल नहीं हूँ, अतः मेरे शाप को भी दुगुना होना चाहिए। अपने व्यस्त जीवन के कुछ क्षणों को छीन कर जैसे-तैसे कुछ लिखते-लिखते मेरे स्वभाव ने मुझे चित्रकला के लिए नितान्त अनुपयुक्त बना दिया है, कारण जितने समय में मैं तुक मिला लेती हूँ उतने ही समय में चित्र समाप्त कर देने के लिए आकुल हो उठती हूँ। ऐसी दशा में अपनी इन विचित्र कृतियों को हिन्दी-संसार के सन्मुख रखते हुए मुझे केवल संकोच है और क्या कहूँ! सन्तोष इतना ही है कि यह मेरी है और मैं हिन्दी-संसार से अविच्छिन्न सम्बन्ध में बँधी हूँ।

जन्माष्टमी
१०-८-३६

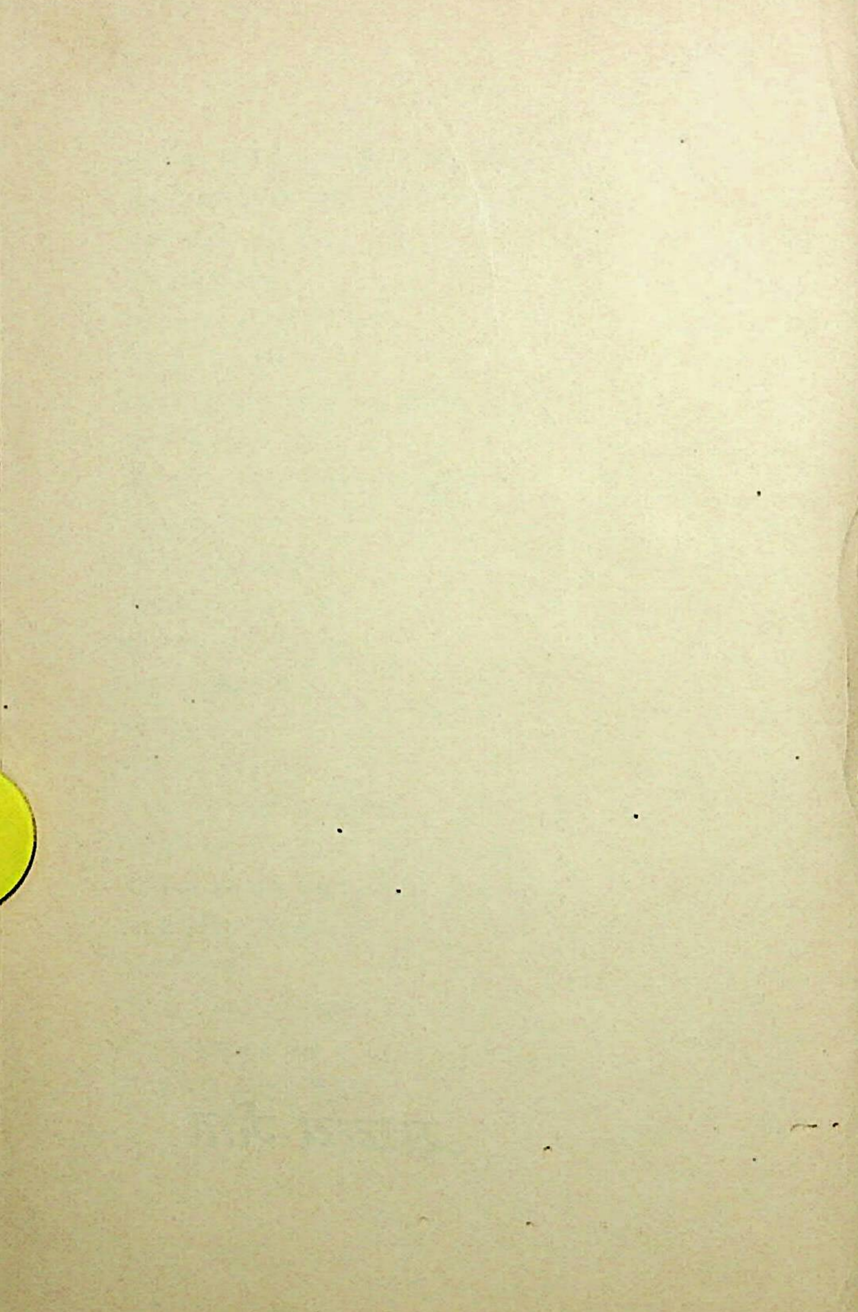
—महादेवी

निर्देशिका

प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
प्रिय ! सान्ध्य गगन, ...	१७
प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !	१९
क्या न तुमने दीप बाला ?	२०
रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !	२२
अश्रु मेरे माँगने जब, ...	२४
क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?	२६
जाने किस जीवन की सुधि ले, ...	२८
शून्य मंदिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी !	२९
प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं !	३०
मेरा सजल मुख देख लेते !	३१
रे पपीहे पी कहाँ ?	३३
विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी ! ...	३४
शलभ मैं शापमय वर हूँ !	३६
पंकज-कली !	३८
हे मेरे चिर सुन्दर अपने !	४०
मैं सजग चिर साधना ले !	४२
मैं किसी की मूक छाया हूँ न क्यों पहचान पाता !	४३
यह सुख-दुखमय राग, ...	४५
सो रहा है विश्व, पर प्रिय तारकों में जागता है !	४६
री कुञ्ज की शेफालिके !	४८
मैं नीरभरी दुख की बदली !	४९

आज मेरे नयन के तारक हुए जलजात देखो ! ५०
प्राण-रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री ! ... ५२
झिलमिलाती रात मेरी ! ५३
दीप तेरा दामिनी ! ५४
फिर विकल हैं प्राण मेरे ! ५५
मेरी है पहेली बात ! ५६
चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ! ५७
प्रिय चिरन्तन है सजनि, ... ५९
कीर का प्रिय आज पिञ्जर खोल दो ! ६१
ओ अरुण वसना ? ६३
देव अब वरदान कैसा ! ६५
तन्द्रिल निशीथ में ले आये ६७
यह सन्ध्या फूली सजीली ! ६९
जाग जाग सुकेशिनी री ! ७१
तब क्षण क्षण मधु-प्याले होंगे ! ७३
आज सुनहली वेला ! ७५
नव घन आज बनो पलकों में ! ७७
क्या जलने की रीति शलभ समझा दीपक जाना ? ७८
सपनों की रज आँज गया नयनों में प्रिय का हास ! ८०
क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन ! ८१
हे चिर महान् ८३
सखि मैं हूँ अमर सुहागभरी ! ८५
कोकिल गा न ऐसा राग ! ८७
तिमिर में वे पदचिन्ह मिले ! ८९

सान्ध्य गीत



प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि-भीने स्वप्न रँगीले घन !

साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन !

लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गन्ध धीर;
सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

अब आदि-अन्त दोनों मिलते,
रजनी-दिन-परिणय से खिलते,
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण!

इच्छाओं के सोने से शर,
किरणों से द्रुत झीने सुन्दर,
सूने असीम नभ में चुभकर—
बन बन आते नक्षत्र-सुमन!

घर आज चले सुख-दुःख-विहग,
तम पोंछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन!

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती !

श्वासों में सपने कर गुम्फित,
बन्दनवार वेदना-चर्चित,
भर दुख से जीवन का घट नित,
मूक क्षणों में मधुर भरूँगी भारती !

दृग मेरे दो दीपक झिलमिल;
भर आँसू का स्नेह रहा ढुल,
सुधि तेरी अविराम रही जल,
पद-ध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती !

यह लो प्रिय ! निधियोंमय जीवन,
जग की अक्षय स्मृतियों का धन,
सुख-सोना करुणा-हीरक-कण,
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती !

क्या न तुमने दीप बाला ?

क्या न इसके शीत अधरों—
से लगाई अमर ज्वाला ?

अगम निशि है यह अकेला,
तुहिन - पतझर - वात - वेला,

उन करों की सजल सुधि में
पहनता अङ्गार-माला !

स्नेह माँगा औ न वाती,
नींद कब, कब क्लान्ति भाती !

वर इसे दो एक कह दो
मिलन के क्षण का उजाला !

झर इसी से अग्नि के कण,
बन रहे हैं वेदना-घन,

प्राण में इसने विरह का—
मोम सा मृदु शलभ पाला!

यह जला निज धूम पीकर,
जीत डाली मृत्यु जी कर,

रत्न सा तम में तुम्हारा
अंक मृदु पद का सँभाला!

यह न झंझा से बुझेगा,
बन मिटेगा मिट बनेगा,

भय इसे है हो न जावे
प्रिय तुम्हारा पंथ काला!

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !

लोचनों में क्या मदिर नव ?
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !

झूलते चितवन गुलाबी—
में चले घर खग हठीले !

छोड़ किस पाताल का पुर ?
राग से बेसुध, चपल सपने लजीले नयन में भर ,

रात नभ के फूल लाई ,
आँसुओं से कर सजीले !

आज इन तन्द्रिल पलों में !
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुन्तलों में !

सजनि नीलम-रज भर
रंग चूनरी के अरुण पीले !

रेख सी लघु तिमिर-लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी!

गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरी ले!

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रही रङ्गीन प्रिय के द्रुत पदों की अंक-संसृति?

सिहरती पलकें किये—
देतीं विहँसते अधर गीले!

अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया !

स्वप्न सा हँस पास आया !

हो गया दिव की हँसी से
शून्य में सुरचाप अंकित ;

रश्मि-रोमों में हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित ;

अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया !
नींद में वह पास आया !

वेदना का अग्निकण जब
मोम से उर में गया बस ,

मृत्यु-अञ्जलि में दिया भर
विश्व ने जीवन-सुधा-रस !

माँगने पतझार से
हिम-बिन्दु तव मधुमास आया !
नींद में वह पास आया !

अमर सुरभित साँस देकर
मिट गये कोमल कुसुम झर ;

रविकरों में जल हुए फिर,
जलद में साकार सीकर ;

अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया !
नींद में वह पास आया !

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?

शशि के दर्पण में देख देख,
मैंने सुलझाये तिमिर-केश ;
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष ;

क्यों आज रिझा पाया उसको,
मेरा अभिनव शृङ्गार नहीं ?

स्मित से कर फीके अधर अरुण,
गति के जावक से चरण लाल ;
स्वप्नों से गीली पलक आँज,
सीमन्त सजा ली अश्रु-माल ;

स्पन्दन मिस प्रतिपल भेज रही
क्या युग युग से मनुहार नहीं ?

मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल ;
कण्टकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल !

सोया समीर; नीरव जग पर
स्मृतियों का भी मृदु भार नहीं !

रुँधे हैं, सिहरा सा दिगन्त,
सित पाटलदल से मृदु बादल;
उस पार रुका आलोक-यान,
इस पार प्राण का कोलाहल!

बेसुध निद्रा है आज बुने—
जाते श्वासों के तार नहीं!

दिन-रात-पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार;
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह-पंथ सूना अपार!

फिर कौन कह रहा है सूना,
अब तक मेरा अभिसार नहीं?

जाने किस जीवन की सुधि ले ,
लहराती आती मधु-बयार !

रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग ,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगन्धा का पराग ,

यूथी की मीलित कलियों से ,
अलि दे मेरी कवरी सँवार !

पाटल के सुरभित रङ्गों से रँग दे हिम सा उज्ज्वल दुकूल ,
गुथ दे रशना में अलि-गुञ्जन से पूरित झरते वकुल-फूल ,

रजनी से अंजन माँग सजनि ,
दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक-लोचन से सींच सींच नभ करता रज को विरज आज ,
बरसाता पथ में हरसिंगार केशर से चर्चित सुमन-लाज ,

कण्टकित रसालों पर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार !
लहराती आती मधु-बयार !

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी!

अर्चना हों शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले,
आज करुणा-स्नात उजला,
दुःख हो मेरा पुजारी!

नूपुरों का मूक छूना,
सरव करदे विश्व सूना,
यह अगम आकाश उतरे
कम्पनों का हो भिखारी!

लोल तारक भी अचञ्चल,
चल न मेरा एक कुन्तल,
अचल रोमों में समाई,
मुग्ध हो गति आज सारी!

राग मद की दूर लाली,
साध भी इसमें न पाली,
शून्य चितवन में बसेगी
मूक हो गाथा तुम्हारी!

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं !

हीरक सी वह याद
बनेगा जीवन सोना,
जल जल तप तप किन्तु
खरा इसको है होना !

चल ज्वाला के देश जहाँ अङ्गारे ही हैं !

तम-तमाल ने फूल
गिरा दिन-पलकें खोलीं,
मैंने दुख में प्रथम
तभी सुख-मिश्री घोली !

ठहरें पलभर देव अश्रु यह खारे ही हैं !

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला,
रजकण मृदु पद चूम
हुए मुकुलों की माला !

मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं !

आकुलता ही आज
होगई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा !

खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं !

मेरा सजल मुख देख लेते !
यह करुण मुख देख लेते !

सेतु शूलों का बना बाँधा विरह-वारीश का जल ;
फूल सी पलकें बनाकर प्यालियाँ बाँटा हलाहल ;

दुःखमय सुख,
सुखभरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम,
ज्वाल-जल का देश देते ?

नयन की नीलम तुला पर मोतियों से प्यार तोला,
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला !

भ्रान्तिमय कण,
श्रान्तिमय क्षण,
थे मुझे वरदान जो तुम
माँग ममता शेष लेते !

पद चले जीवन चला पलकें चलीं स्पन्दन रही चल ;
किन्तु चलता जा रहा मेरा क्षितिज भी दूर धूमिल !

अङ्ग अलसित,
प्राण विजड़ित,
मानती जय जो तुम्हीं
हँस हार आज अनेक देते !

घुल गई इन आँसुओं में देव जाने कौन हाला ;
झूमता है विश्व पी पी घूमती नक्षत्र-माला ;

साध है तुम
बन सघन तम,
सुरँग अवगुण्ठन उठा
गिन आँसुओं की रेख लेते !

शिथिल चरणों के थकित इन नूपुरों की करुण रुनझुन,
विरह का इतिहास कहती जो कभी पाते सुभग सुन,

चपल पद धर
आ अचल उर,
वार देते मुक्ति, खो
निर्वाण का सन्देश देते !

रे पपीहे पी कहाँ ?

खोजता तू इस क्षितिज से उस क्षितिज तक शून्य अम्बर ,
लघु परों से नाप सागर ,

नाप पाता प्राण मेरे
प्रिय समा कर भी कहाँ ?

हँस डुबा देगा युगों की प्यास का संसार भर तू ,
कण्ठगत लघु बिन्दु कर तू !

प्यास ही जीवन, सकूँगी
तृप्ति में मैं जी कहाँ ?

मुखर ! बन बन कर मिटेगी झूम तेरी मेघमाला ,
मैं स्वयं जल और ज्वाला !

दीप सी जलती न तो यह
सजलता रहती कहाँ ?

साथ गति के भर रही हूँ विरति या आसक्ति के स्वर ,
मैं बनी प्रिय-चरण-नूपुर !

प्रिय बसा उर में सुभग !
सुधि खोज की बसती कहाँ ?

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी सी !

दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर ;
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर ;

आज है निःसीमता
नव स्वप्न की अनुरागिनी सी !

एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग युग की कहानी ;
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनों का क्षार पानी ;

मूक प्रतिनिश्वास है
लघु प्राण की अनुगामिनी सी !

सजनि ! अन्तर्हित हुआ है 'आज' में धुँधला विफल 'कल' ;
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल ;

राह मेरी देखती
स्मृति अब निराश पुजारिनी सी !

फैलते हैं सान्ध्य नभ में भाव ही मेरे रँगीले ;
तिमिर की दीपावली हैं रोम मेरे पुलक-गीले ;

बन्दिनी बनकर हुई
मैं बन्धनों की स्वामिनी सी !

शलभ मैं शापमय वर हूँ!
किसी का दीप निष्ठुर हूँ!

ताज है जलती शिखा;
चिनगारियाँ शृङ्गारमाला;
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रङ्गशाला;

नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ!

नयन में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी;
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि समाधि होगी।

फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ!

हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल;
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल।

एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ!

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अँगुलियों की
हैं मुझे पर युग विताने;

रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ!

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा,
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा,

मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ!

पंकज-कली !

क्या तिमिर कह जाता करुण ?
क्या मधुर दे जाती किरण ?
किस प्रेममय दुख से हृदय में
अश्रु में मिश्री घुली ?

किस मलय-सुरभित अंक रह—
आया विदेशी गन्धवह ?
उन्मुक्त उर अस्तित्व खो
क्यों तू उसे भुजभर मिली ?

रवि से झुलसते मौन दृग,
जल में सिहरते मृदुल पग,
किस व्रतव्रती तू तापसी
जाती न सुख-दुख से छली ?

मधु से भरा विधुपात्र है,
मद से उनींदी रात है,
किस विरह में अवनतमुखी
लगती न उजियाली भली?

यह देख ज्वाला में पुलक,
नभ के नयन उठते छलक!
तू अमर होने नभ-धरा के
वेदना-पय से पली!

पंकज-कली! पंकज-कली!

हे मेरे चिर सुन्दर अपने !

भेज रही हूँ श्वासें क्षण क्षण,
सुभग मिटा देंगी पथ से यह तेरे मृदु चरणों का अंकन !

खोज न पाऊँगी, निर्भय
आओ जाओ बन चंचल सपने !

गीले अञ्चल में धोया सा—
राग लिए, मन खोज रहा कोलाहल में खोया खोया सा !

मोम-हृदय जल के कण ले
मचला है अंगारों में तपने !

नूपुर-बन्धन में लघु मृदु पग,
आदि अन्त के छोर मिलाकर वृत्त बन गया है मेरा मग!

पद-निक्षेपों में पाया कुछ
मधु सा मेरी साध-मधुप ने!

यह प्रतिपल तरणी बन आते,
पार कहीं होता तो यह दृग अगम समय-सागर तर जाते?

अन्तहीन चिर विरह माप ले
आज चला लघु जीवन नपने!

मैं सजग चिर साधना ले !

सजग प्रहरी से निरन्तर ,
जागते अलि रोम निर्भर ;
निमिष के बुद्बुद् मिटाकर ,
एक रस है समय-सागर !

हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले !

मूँद पलकों में अचञ्चल ,
नयन का जादूभरा तिल ,
दे रही हूँ अलख अविकल—
को सजीला रूप तिल तिल !

आज वर दो मुक्ति आवे बन्धनों की कामना ले !

विरह का युग आज दीखा ,
मिलन के लघु पल सरीखा ,
दुःख सुख में कौन तीखा ,
मैं न जानी औ' न सीखा !

मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले !

मैं किसी की मूक छाया हूँ न क्यों पहचान पाता !

उमड़ता मेरे दृगों में बरसता घनश्याम में जो ;
अधर में मेरे खिला नव इन्द्रधनु अभिराम में जो ;

बोलता मुझ में वही जग मौन में जिसको बुलाता !

जो न होकर भी बना सीमा क्षितिज वह रिक्त हूँ मैं ;
विरति में भी चिर विरति की बन गई अनुरक्ति हूँ मैं ;

शून्यता में शून्य का अभिमान ही मुझको बनाता !

श्वास हैं पद-चाप प्रिय की प्राण में जब डोलती है ,
मृत्यु है जब मूकता उसकी हृदय में बोलती है ,

विरह क्या पद चूमने मेरे सदा संयोग आता !

नींद-सागर से सजनि ! जो ढूँढ़ लाई स्वप्न मोती,
गूँथती हूँ हार उनका क्यों कहा मैं प्रात रोती ?

पहन कर उनको स्वजन मेरा कली को जा हँसाता !

प्राण में जो जल उठा वह और है दीपक चिरन्तन ;
कर गया तम चाँदनी वह दूसरा विद्युत-भरा घन ;

दीप को तज कर तुझे कैसे शलभ पर प्यार आता !

तोड़ देता खीझकर जब तक न प्रिय यह मृदुल दर्पण,
देखले उसके अधर सस्मित, सजल दृग, अलख आनन,

आरसी प्रतिबिम्ब का कब चिर हुआ जग स्नेह-नाता !

यह सुख-दुखमय राग
बजा जाते हो क्यों अलबेले ?

चितवन से रेखा अंकित कर,
रागमयी स्मित से नव रंग भर,
अश्रुकणों से धोते हो क्यों
फिर वे चित्र रंगे, ले ?

श्वासों से पलकें स्पन्दित कर,
स्वप्नों से स्मृतियाँ जाग्रत कर,
पद-ध्वनि से बेसुध करते क्यों
यह जागृति के मेले ?

रोमों में भर आकुल कम्पन,
मुस्कानों में दुख की सिहरन,
जीवन को चिर प्यास पिलाकर
क्यों तुम निष्ठुर खेले ?

कण कण में रच अभिनव बन्धन,
क्षण क्षण को कर भ्रममय उलझन,
पथ में बिखरा शूल
बुला जाते क्यों दूर अकेले ?

सो रहा है विश्व, पर प्रिय तारकों में जागता है!

नियति बन कुशली चितेरा—
रँग गई सुख-दुख रँगों से
मृदुल जीवन-पात्र मेरा!

स्नेह की देती सुधा भर अश्रु खारे माँगता है!

धूपछाँहीं विरह-वेला,
विश्व-कोलाहल बना वह
ढूँढ़ती जिसको अकेला,

छाँह दृग पहचानते पदचाप यह उर जानता है!

रङ्गमय है देव दूरी!
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीड़ा अधूरी!

दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है!

वह सुनहला हास तेरा—
अंकभर घनसार सा
उड़ जायगा अस्तित्व मेरा!

मूँद पलकें रात करती जब हृदय हठ ठानता है!

मेघ-रूँधा अजिर गीला—
टूटता सा इन्दु-कन्दुक
रवि झुलसता लोल पीला!

यह खिलौने और यह उर! प्रिय नई असमानता है!

री कुञ्ज की शेफालिके !

गुदगुदाता वात मृदु उर,
निशि पिलाती ओस-मद भर,
आ झुलाता पात-मर्मर,

सुरभि बन प्रिय जायगा पट—
मूँद ले दृग-द्वार के !

तिमिर में बन रश्मि-संसृति,
रूपमय रंगमय निराकृति,
निकट रह कर भी अगम गति,

प्रिय बनेगा प्रात ही तू
गा न विहग-कुमारिके !

क्षितिज की रेखा घुले धुल,
निमिष की सीमा मिटे मिल,
रूप के बन्धन गिरें खुल,

निशि मिटा दे अश्रु से
पद-चिह्न आज विहान के !

मैं नीरभरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!

मेरा पग पग संगीतभरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली!

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नव जीवन-अंकुर बन निकली!

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में
सुख की सिहरन हो अंत खिली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली!

आज मेरे नयन के तारक हुए जलजात देखो !

अलस नभ के पलक गीले
कुन्तलों से पोंछ आई,
सघन बादल भी प्रलय के,
श्वास से मैं बाँध लाई ;

पर न हो निस्पन्दता में चञ्चला भी स्नात देखो !

मूक प्राणायाम में लय—
हो गई कम्पन अनिल की,
एक अचल समाधि में थक,
सो गई पुलकें सलिल की ;

प्रात की छबि लें चली आई नशीली रात देखो !

आज बेसुध रोम रोमों—
में हुई वह चेतना भी ;
मूर्च्छिता है एक प्रहरी सी
सजग चिर वेदना भी ;

रश्मि से हौले चले जाओ न हों उत्पात देखो !

एक सुधि-सम्बल तुम्हीं से
प्राण मेरा माँग लाया,
तोल करती रात जिसका
मोल करता प्रात आया;

दे वहा इसको न करुणा की कहीं बरसात देखो!

एकरस तम से भरा है,
एक मेरा शून्य आँगन;
एक ही निष्कम्प दीपक—
से दुकेला हो रहा मन,

आज निज पदचाप की भेजो न झंझावात देखो!

प्राण-रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री !

वह प्रिय दूर पन्थ अनदेखा,
श्वास मिटाते स्मृति की रेखा,

पथ बिन अन्त, पथिक छायामय,
साथ कुहकिनी रात री !

संकेतों में पल्लव बोले,
मृदु कलियों ने आँसू तोले,

असमञ्जस में डूब गया,
आया हँसता जो प्रात री !

नभ पर दुख की छाया नीली,
तारों की पलकें हैं गीली,

रोते मुख पर मेघ
आह रूँधे फिरता है वात री !

लघु पल युग का भार सँभाले,
अब इतिहास बने हैं छाले,

स्पन्दन शब्द व्यथा की पाती,
दूत नयन-जलजात री !

झिलमिलाती रात मेरी !

साँझ के अन्तिम सुनहले
हास सी चुपचाप आकर,
मूक चितवन की विभा--
तेरी अचानक छू गई भर,

बन गई दीपावली तव आँसुओं की पाँत मेरी।

अश्रु घन के बन रहे स्मित—
सुप्त वसुधा के अधर पर,
कंज में साकार होते
वीचियों के स्वप्न सुन्दर,

मुस्करा दी दामिनी में साँवली बरसात मेरी !

क्यों इसे अम्बर न निज
सूने हृदय में आज भर ले ?
क्यों न यह जड़ में पुलक का,
प्राण का सञ्चार कर ले ?

है तुम्हारी श्वास के मधु-भार-मन्थर वात मेरी !

दीप तेरा दामिनी!

चपल चितवन-ताल पर बुझ-बुझ जला री मानिनी!

गन्धवाही गहन कुन्तल,
तूल से मृदु धूम-श्यामल,

घुल रही इनमें अमा ले आज पावस-यामिनी!

इन्द्रधनुषी चीर हिल हिल,
छाँह सा मिल धूप सा खिल,

पुलक से भर भर चला नभ की समाधि विरागिनी!

कर गई जब दृष्टि उन्मन,
तरल सोने में घुले कण,

छू गई क्षण भर धरा-नभ सजल दीपक-रागिनी!

तोलते कुरवक सलिल-घन,
कण्टकित है नीप का तन,

उड़ चली वक-पाँत तेरी चरण-ध्वनि-अनुसारिणी!

कर न तू मञ्जीर का स्वन,
अलस पग धर सँभल गिन गिन,

है अभी झपकी सजनि सुधि विकल क्रन्दनकारिणी!

फिर विकल हैं प्राण मेरे !

तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?

क्यों मुझे प्राचीर बन कर
आज मेरे श्वास घेरे ?

सिन्धु की निःसीमता पर लघु लहर का लास कैसा !
दीप लघु शिर पर धरे आलोक का आकाश कैसा !

दे रही मेरी चिरन्तनता
क्षणों के साथ फेरे !

बिम्बग्राहकता कणों को शलभ को चिर साधना दी,
पुलक से नभ भर धरा को कल्पनामय वेदना दी,

मत कहो हे विश्व ! 'झूठे
हैं अतुल वरदान तेरे' !

नभ डुबा पाया न अपनी बाढ़ में भी क्षुद्र तारे,
ढूँढ़ने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफ़ान हारे,

अन्त के तम में बुझें क्यों
आदि के अरमान मेरे !

मेरी है पहेली बात !

रात के झीने सितांचल-
से बिखर मोती बने जल,
स्वप्न पलकों में विचर झर
प्रात होते अश्रु केवल !

सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात !

मुस्करा कर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर-विष,
आँसुओं का क्षार पी मैं
बाँटती नित स्नेह का रस !

सुभग मैं उतनी मधुर हूँ मधुर जितना प्रात !

ताप-जर्जर विश्व उर पर—
तूल से घन छा गये भर;
दुःख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करुणाभरा उर !

सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात !

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !

जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओं में निठुर तूफान बोले !

पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?

तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रु-कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया?
सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्यों?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया?

अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?

कह न ठंढी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी,
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक् पतंग की है अमर दीपक की निशानी!

है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!

प्रिय चिरन्तर है सजनि
क्षण क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

श्वास में मुझको छिपा कर वह असीम विशाल चिर घन,
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन,

छिप कहाँ उसमें सकी
बुझ बुझ जली चल दामिनी मैं!

छाँह को उसकी सजनि नव आवरण अपना बना कर,
धूलि में निज अश्रु बोने में पहर सूने बिताकर,

प्रात में हँस छिप गई
ले छलकते दृग यामिनी मैं!

मिलन-मन्दिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुण्ठन,
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण,

सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं!

दीप सी युग युग जलूँ पर वह सुभग इतना बता दे,
फूँक से उसकी बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे!

वह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं!

सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु ससीम सा यह,

रज-कणों में खेलती किस
विरज विधु की चाँदनी मैं?

कीर का प्रिय आज पिञ्जर खोल दो ;

हो उठी हैं चञ्चु छूकर ,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर ;

बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले ,
सिहरता जड़ मौन पिञ्जर !

आज जड़ता में इसी की बोल दो !

जग पड़ा छू अश्रु-धारा ,
हत परों का विभव सारा ;

अब अलस बन्दी युगों का—
ले उड़ेगा शिथिल कारा !

पंख पर वे सजल सपने तोल दो !

क्या तिमिर कैसी निशा है!
आज विदिशा ही दिशा है;

दूर-खग आ निकटता के
अमर बन्धन में बसा है!

प्रलय-घन में आज राका घोल दो!

चपल पारद सा विकल तन,
सजल नीरद सा भरा मन,

नाप नीलाकाश ले जो
बेड़ियों का माप यह वन,

एक किरण अनन्त दिन की मोल दो!

ओ अरुण वसना !

तारकित नभ-सेज से वे
रश्मि-अप्सरियाँ जगातीं ;

अगरु-गन्ध बयार ला ला
विकच अलकों को बसाती !

रात के मोती हुए पानी हँसी तू मुकुल-दशना !

छू मृदुल जावक-रचे पद
हो गये सित मेघ पाटल ,

विश्व की रोमावली
आलोक-अंकुर सी उठी जल !

बाँधने प्रतिध्वनि बढ़ीं लहरें बजीं जब मधुप-रशना !

वन्धनों का रूप तम ने
रात भर रो रो मिटाया ;

देखना तेरा क्षणिक् फिर
अमिट सीमा बाँध आया !

दृष्टि का निक्षेप है बस रूप-रङ्गों का बरसना !

है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया ;

आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया !

राग छलकाती हुई तू आज इस पथ में न हँसना !

देव अब वरदान कैसा !

बेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है !
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है !

छीन सब मीठे क्षणों को,
इन अथक अन्वेषणों को

आज लघुता ले मुझे
दोगे निठुर प्रतिदान कैसा !

जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना ;
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना ;

इन्द्रधनु से नित सजी सी ,
विद्यु-हीरक से जड़ी सी ,

मैं भरी बदली रहूँ
चिर मुक्ति का सन्मान कैसा !

युगयुगान्तर की पथिक मैं छू कभी लूँ छाँह तेरी ,
ले फिरूँ सुधि दीप सी, फिर राह में अपनी अँधेरी ;

लौटता लघु पल न देखा ,
नित नये क्षण-रूप-रेखा ,

चिर बटोही मैं, मुझे
चिर पंगुता का दान कैसा !

तन्द्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन !
प्राणों में भरने स्वर नवीन !

तममय तुषारमय कोने में
छेड़ा जब दीपक-राग एक,
प्राणों प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक !

तेरे गीतों के पंखों पर उड़ चले विश्व के स्वप्न दीन !

तट पर हो स्वर्ण-तरी तेरी
लहरों में प्रियतम की पुकार,
फिर कवि हमको क्या दूर देश
कैसा तट क्या मँझधार पार?

दिव से लावै फिर विश्व जाग चिर जीवन का वरदान छीन!

गाया तुमने है मृत्यु मूक
जीवन सुख-दुखमय मधुर गान,
सुन तारों के वातायन से
झाँके शतशत अलसित विहान!

लाई भर अंचल में बतास प्रतिध्वनि का कण कण बीन बीन!

दमकी दिगन्त के अधरों पर
स्मित की रेखा सी क्षितिज-कोर,
आगये एक क्षण में समीप
आलोक तिमिर के दूर छोर!

घुल गया अश्रु में अरुण हास होगई हार में जय विलीन!

यह सन्ध्या फूली सजीली !

आज बुलाती हैं विहगों को नीड़ें बिन बोले ;
रजनी ने नीलम-मन्दिर के वातायन खोले !

एक सुनहली उर्म्मि क्षितिज से टकराई बिखरी ,
तम ने बढ़कर बीन लिए, वे लघु कण बिन तोले !

अनिल ने मधु-मदिरा पी ली !

मुरझाया वह कंज बना जो मोती का दोना,
पाया जिसने प्रात उसी को है अब कुछ खोना!

आज सुनहली रेणु मली सस्मित गोधूली ने,
रजनीगन्धा आँज रही है नयनों में सोना!

हुई विद्रुम वेला नीली!

मेरी चितवन खींच गगन के कितने रँग लाई!
शतरंगों के इन्द्रधनुष सी स्मृति उर में छाई;

राग-विरागों के दोनों तट मेरे प्राणों में,
श्वासें छूतीं एक, अपर निश्वासें छू आईं!

अधर सस्मित पलकें गीली!

भाती तम की मुक्ति नहीं, प्रिय रागों का बन्धन;
उड़ उड़ कर फिर लौट रहे हैं लघु उर में स्पन्दन;

क्या जीने का मर्म यहाँ मिट मिट सबने जाना?
तर जाने को मृत्यु कहा क्यों बहने को जीवन?

सृष्टि मिटने पर गर्वीली!

जाग जाग सुकेशिनी री!

अनिल ने आ मृदुल हौले,
शिथिल वेणी-बन्ध खोले,

पर न तेरे पलक डोले,

बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वरवेषिनी री!

छाँह में अस्तित्व खोये,
अश्रु से सब रङ्ग धोये,

मन्दप्रभ दीपक सँजोये,

पंथ किसका देखती तू अलस
स्वप्न-निमेषिनी री!

रजत-तारों से घटा बुन,
गगन के चिर दाग गिन गिन,

श्रान्त जग के श्वास चुन चुन,

सो गई क्या नींद का अज्ञात—
पथ-निर्देशिनी री?

दिवस की पद-चाप चंचल,
श्रान्ति में सुधि सी मधुर चल,

आ रही है निकट प्रतिपल,

निमिष में होगा अरुण जग
ओ विराग-निवेशिनी री!

रूप-रेखा-उलझनों में,
कठिन सीमा-बन्धनों में,

जग बँधा निष्ठुर क्षणों में!

अश्रुमय कोमल कहाँ तू
आ गई परदेशिनी री!

तब क्षण क्षण मधु-प्याले होंगे !

जब दूर देश उड़ जाने को
दृग-खंजन मतवाले होंगे !

दे आँसू-जल स्मृति के लघु कण,
मैंने उर-पिञ्जर में उन्मन,
अपना आकुल मन बहलाने
सुख-दुख के खग पाले होंगे !

जब मेरे शूलों पर शत शत,
मधु के युग होंगे अवलम्बित,
मेरे क्रन्दन से आतप के—
दिन सावन हरियाले होंगे!

यदि मेरे उड़ते श्वास विकल,
उस तट को छू आवें केवल,
मुझमें पावस रजनी होगी
वे विद्युत् उजियाले होंगे!

जब मेरे लघु उर में अम्बर,
नयनों में उतरेगा सागर,
तब मेरी कारा में झिलमिल
दीपक मेरे छाले होंगे!

आज सुनहली वेला!

आज क्षितिज पर जाँच रहा है तूली कौन चितेरा?
मोती का जल सोने की रज विद्रुम का रँग फेरा!
क्या फिर क्षण में,
सान्ध्य गगन में,
फैल मिटा देगा इसको
रजनी का श्वास अकेला?

लघु कण्ठों के कलरव से ध्वनिमय अनन्त अम्बर है,
पल्लव बुद्बुद् और गले सोने का जग सागर है;
शून्य अंक भर—
रहा सुरभि उर;
क्या सूना तम भर न सकेगा
यह रागों का मेला?

विद्रुमपंखी मेघ इन्हें भी क्या जीना क्षण भर ही?
गोधूली-तम का परिणय है तम की एक लहर ही!
क्यों पथ में मिल,
युग युग प्रतिपल,
सुख ने दुख दुख ने सुख के—
वर अभिशापों को झेला?

कितने भावों ने रँग डालीं सूनी साँसें मेरी,
स्मित में नव प्रभात चितवन में सन्ध्या देती फेरी;
उर जलकणमय,
सुधि रङ्गोमय,
देखूँ तो तम बन आता है
किस क्षण वह अलबेला!

नव घन आज बनो पलकों में!
पाहुन अब उतरो पलकों में!

तमसागर में अङ्गारे सा,
दिन बुझता टूटे तारे सा,
फूटो शतशत विद्यु-शिखा से
मेरी इन सजला पुलकों में!

प्रतिमा के दृग सा नभ नीरस,
सिकता-पुलिनों सी सूनी दिश,
भर भर मन्थर सिहरन कम्पन
पावस से उमड़ो अलकों में!

जीवन की लतिका दुख-पतझर,
गए स्वप्न के पीत पात झर,
मधुदिन का तुम चित्र बनो अब
सूने छण छण के फलकों में!

क्या जलने की रीति शलभ समझा दीपक जाना ?

घेरे है बन्दी दीपक को
ज्वाला की वेला,
दीन शलभ भी दीप-शिखा से
सिर धुन धुन खेला !
इसको क्षण सन्ताप भोर उसको भी बुझ जाना !

इसके झुलसे पंख, धूम की
उसके रेख रही,
इसमें वह उन्माद न उसमें
ज्वाला शेष रही !
जग इसको चिर तृप्ति कहे या समझे पछताना ?

प्रिय मेरा चिर दीप जिसे छू
जल उठता जीवन,
दीपक का आलोक शलभ
का भी इसमें क्रन्दन!
युग युग जल निष्कम्प इसे जलने का वर पाना!

धूम कहाँ विद्युत्-लहरों से
है निश्वास भरा,
झंझा की कम्पन देती
चिर जागृति का पहरा!
जाना उज्ज्वल प्रात न यह काली निशि पहचाना!

सपनों की रज आँज गया नयनों में प्रिय का हास !

अपरिचित का पहचाना हास !
पहनो सारे शूल ! मृदुल
हँसती कलियों के ताज,
निशि ! आ आँसू पोछ
अरुण सन्ध्या-अंशुक में आज,

इन्द्रधनुष करने आया तम के श्वासों में वास !

सुख की परिधि सुनहली घेरे
दुख को चारो ओर,
भेंट रहा मृदु स्वप्नों से
जीवन का सत्य कठोर !

चातक के प्यासे स्वर में सौ सौ मधु रचते रास !

मेरा प्रतिपल छू जाता है
कोई कालातीत,
स्पन्दन के तारों पर गाती
एक अमरता गीत !

भिक्षुक सा रहने आया दृग-तारक में आकाश !

क्यों मुझे प्रिय हो न बन्धन !

बन गया तम-सिन्धु का, आलोक सतरङ्गी पुलिन सा;
रजभरे जग-बाल से है, अंक विद्युत् का मलिन सा;
स्मृति पटल पर कर रहा अब
वह स्वयं निज रूप-अंकन !

चाँदनी मेरी अमा का, भेंटकर अभिषेक करती;
मृत्यु-जीवन के पुलिन दो आज जागृति एक करती;
हो गया अब दूत प्रिय का
प्राण का संदेश, स्पन्दन !

सजनि मैंने स्वर्ण-पिञ्जर में प्रलय का वात पाला,
आज पुंजीभूत तम को कर, बना डाला उजाला,
तूल से उर में समा कर
हो रही नित ज्वाल चन्दन !

आज विस्मृति-पन्थ में निधि से मिले पद-चिह्न उनके,
वेदना लौटा रही है विफल खोये स्वप्न गिनके;
घुल हुई इन लोचनों में
चिर प्रतीक्षा पूत अञ्जन !

आज मेरा खोज-खग गाता चला लेने बसेरा;
कह रहा सुख अश्रु से 'तू है चिरन्तन प्यार मेरा',
बन गए बीते युगों को
विकल मेरे श्वास स्यन्दन!

बीन-बन्दी तार की झंकार है आकाशचारी;
धूलि के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी;
बाँधती निर्बन्ध को मैं
बन्दिनी निज बेड़ियाँ गिन!

नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा,
पुलक-पंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा;
कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन।

हे चिर महान् !

यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रङ्गीन हास;

सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान !

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार,

मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !

टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार हार;

वह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुनकर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुख में समान !

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;

तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप ।
उर में पावस दृग में विहान !

सखि मैं हूँ अमर सुहागभरी!
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!

किसको त्यागूँ किसको माँगूँ,
हैं एक मुझे मधुमय विषमय;
मेरे पद छूते ही होते,
काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय!
पालूँ जग का अभिशाप कहाँ
प्रतिरोमों में पुलकें लहरीं!

जिसको पथ-शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन, गह्वर;
प्रिय के सन्देशों के वाहक,
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर;
मेरी लघु पलकों से छलकी
इस कण कण में ममता बिखरी!

अरुणा ने यह सीमन्त भरी,
सन्ध्या ने दी पद में लाली;
मेरे अंगों का आलेपन
करती राका रच दीवाली!
जग के दागों को धो धो कर
होती मेरी छाया गहरी!

पद के निक्षेपों से रज में
नभ का वह छायापथ उतरा,
श्वासों से घिर आती बदली
चितवन करती पतझार हरा!
जब मैं मरु में भरने लाती
दुख से, रीती जीवन-गगरी!

कोकिल गा न ऐसा राग!
मधु की चिर प्रिया यह राग!

उठता मचल सिन्धु-अतीत,
लेकर सुप्त सुधि का ज्वार;
मेरे रोम में सुकुमार
उठते विश्व के दुख जाग!

झूमा एक ओर रसाल,
काँपा एक ओर बबूल;
फूटा वन अनल के फूल
किंशुक का नया अनुराग!

दिन है अलस मधु से स्नात,
रातें शिथिल दुख के भार,
जीवन ने किया शृंगार
लेकर सलिल-कण औ' आग!

यह स्वर-साधना ले वात ,
वनती मधुरकटु, प्रतिवार ,
समझा फूल मधु का प्यार
जाना शूल करुण विहाग !

जिसमें रमी चातक-प्यास ,
उस नभ में वसें क्यों गान ,
इसमें है मदिर वरदान
उसमें साधनामय त्याग !

जो तू देख ले दृग आर्द्र ,
जग के नमित जर्जर प्राण ,
गिन ले अधर सूखे म्लान
तुझको भार हो मधु-राग !

तिमिर में वे पद-चिह्न मिले !

युग युग का पन्थी आकुल मन,
बाँध रहा पथ के रजकण चुन ;
श्वासों में रूँधे दुख के पल
बन बन दीप चले !

अलसित तन में, विद्युत-सी भर,
वर बनते मेरे श्रम-सीकर,
एक एक आँसू में शत शत
शतदल-स्वप्न खिले!

सजनि प्रिय के पद-चिह्न मिले!

